रविन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार मानव जीवन में स्वतन्त्रता का महत्व

समूचा विश्व समुदाय इस सिद्वान्त को स्वीकार करता है कि '' परिस्थितियॉ मानवीय चेतना का निर्धारण करती है'' यह सिद्वांत इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि टैगोर का पूरा जीवन भारत की गुलामी का काल रहा है, जिसका प्रभाव गुरूदेव के चिंतन पर स्पष्ट परिलक्षित होता है।

यघपि गुरूदेव मौलिक रूप से कवि एंव दार्शनिक है तथापि गुरूदेव ने मानव जीवन के चरम आदर्श को पाने का मार्ग ढूॅढनें का प्रयास किया है। गुरूदेव टैगोर ने मानव को प्रकृति में अन्य जीव–जातियों से भिन्न स्वीकारा है, गुरूदेव का मानना था सृष्टि के विकास के क्रमिक चरण में अन्य जीव–जातियों उतनी ही विकास की क्षमतायें प्राप्त कर सके है, जितना प्रकृति ने उन्हे प्रदत्त किया है, परन्तु 'मानव' में विकास प्रक्रिया के अतिरिक्त कुछ और उससे परे की क्षमताओं को प्राप्त करने की क्षमता आ गयी है। जिसे गुरूदेव ने मानव के सन्दर्भ में अतिरिक्त क्षमता अथवा आधिक्य (Surplus) कहा है। यह Surplus सदा उसे उठने की शक्ति प्रदान करता है। इसी आधिक्य के बल पर वह उन सीमाओं से उपर उठ जाता है, जिनमें अन्य जीव बॅधे रह जाते है।

टैगौर की कविताओं में स्वतन्त्रता का ही स्वर मुखर है। गीतांजलि में उनकी कविता 'रात्रि के स्वप्न में छुट्टी मिली में प्रतीकात्मक ढ़ंग से स्वतन्त्रता का उद्घोष किया गया है–

रात्रि के स्वप्न से छुट्टी मिली, निशा स्वप्न भंग हुआ।

सब बंधन टूट गये

अब प्राण ओट में नही रहे, मै बाहर जगत में आ गया।

हदय कमल की सारी पंखुडियॉ फूट पड़ी।

मेरा द्वार तोड़कर जब तू स्वयं सामने आ खड़ा हुआ।

तब ऑखों के नीर

मे बहता हुआ ह्दय

तेरे चरणों में लुटा दिया

नाम से प्रभात के प्रकाश ने मेरी ओर हाथ फैलाया

बंदीगृह के टूटे हुए दरवाजे से जय–जयकार का

उच्चार उमड़ पड़ा।

पूरी गीतांजलि में भक्ति रस की भावधारा प्रवाहित हो रही है। ''मुक्ति'' नामक कविता में भगवान की उपासना टैगोर विरागी न होकर अपितु रागी होकर करना चाहते है–

''वैराग्य साधन के द्वारा मुक्ति मेरे लिये नही है

मैं असख्य बन्धनों में

महा आनन्दमय मुक्ति का स्वाद लूँगा

इस वसुधा के मिट्टी के पात्र में बार–बार

तुम्हारा नाना वर्ण गन्धमय अमृत निरन्तर ढालता रहूँगा

सारा संसार दीपक के समान मेरी लक्ष लक्ष वर्तिकाओं को

तुम्हारी ही शिखा से छूकर तुम्हारे मन्दिर में प्रज्ज्वलित कर देगा।

इन्द्रियों के द्वाररूद्व करके

योगासन मेरे लिये नही है

जे कुछ भी आनन्द है दृश्य, गन्ध और आहार में

तुम्हारा आनन्द उसी मे निवास करेगा

मोह मोह जल उठेगा मुक्ति बनकर

मेरा प्रेम फलेगा भक्ति बनकर।

टैगोर अपनी गीतांजलि को उस पास को तोड़ना चाहते है जिसने जीवन को बांध रखा है–

मोह ने मुझे बांध रखा है–

मै उसे तोड़ना चाहता हूँ, किन्तु उसे तोडते हुए

मेरा मन दुःखी हो जाता है।

मुक्ति मांगने के लिये मै तेरे पास जातह हूँ।

यह मै जानता हूँ,

''मेरे जीवन में तू ही मेरी सर्वश्रेष्ठ निधि है, तुझ सा अनमोल

धन कोई दूसरा नहीं

किन्तु घर में जो टूटा फूटा पड़ा है, उसे

फेंकने को दिल नही मानता।

जे आवरण मेरे प्राणों पर पड़ा है, वह

धूलि धूसर है और मृत्यु के शाप से ग्रस्त है, मेरा मन उसे

धिक्कारता है, तो भी उससे मुझे लगाव है

मेरे ऋणो का अंत नही, मेरे खाते में अनेक वंचनाओं की रकमें

जमा है, मेरे जीवन की विफलताएं बड़ी है, मेरी लज्जा

की सीमा नही,

फिर भी जब कल्याण की भिक्षा मांगने तेरे सामने आता

हूँ तो म नही मन इस डर से कॉपता हूँ, कही

मेरी भिक्षा स्वीकार न हो जाए।

टैगोर ने स्वतन्त्रता के लक्ष्य को पाने के लिये आत्मोन्नति का मार्ग अपनाया है। वे भगवान में अपने को पूर्ण रूप से समर्पित करते है–

''अपने मन को अपनी देह को, इस काली छाया को

एकदम मिटाना चाहता हूँ–

यह कामना मेरे मन में बहुत तीव्र हो उठी है

जी चाहता है, उस छाया को आग में झोंक दूँ, समुद्र में,

डुबा दूँ या तेरे चरणों में द्रवित कर बहा दू।

जहॉ भी जाता हूँ ''अंह'' की यह छाया मेरे साथ जाती है,

जहॉ बैठू, यह पहले की आसन जमा लेती है।

शर्म से मेरा मन धरती में गड़ा जाता है।

इस गहरी छाया को, मेरे मन को,

मेरी काया को तू मिटा दे।

मेरी इस भावना में कोई कमी नही

इस माया को, मन को, काया को

हटाकर तू अपना पूर्ण दर्शन दे।

स्वतन्त्रता के लिये जो नैसर्गिक छटपटाहट है, उसे टैगोर ने अपनी

दुः समय कविता में एक विहंग के माध्यम से अभिव्यक्त किया है–

अरे भय नहीं है स्नेह मोह का बंधन नहीं है,

अरे आशा भी नही है, आशा तो सिर्फ धोखा है।

अरे भाषा नहीं है, वृथा बैठकर रोना भी नही है,

अरे घर नही है, फूलों की सेज की रचना भी नही है

है केवल पंख, है महा आकाश का यह प्रांगण,

जिसमें उषा खो गयी है और निविड़ अंधकार अंकित है

ऐ विंहग, अरे, ओ मेंरं विंहग

अंधे मेरे, अभी पंख बंद मत कर।

अपनी ''वसुन्धरा'' नामक कविता में कवि ने अपने आपकों किस प्रकार प्रकृति की गोद में समर्पित कर दिया है–

हे वसुन्धरे, मुझे लौटा लो,

अपनी गोद की सन्तान को अपनी गोद में

विपुल अंचल की छाया में।

है मृण्मयी जननि,

मै तुम्हारी धूल में व्याप्त हो जाउॅ

दिशा–विदिशाओं में अपने–आपकों

वसंन्त के आनन्द की तरह बिखेंर दूॅ।

वक्ष के इस पींजरे, संर्कीण प्राचीर के पाषाण बन्धन

को तोड़कर''

अपने निरानन्द अधंकारागार को हिलाकर,

गुँजाकर, कंपित करके, तोड़–फोड़कर,

विकीर्ण करके, सिहरते हुए,

बहता हुआ चला जाउँ

''है, मेरे अभागे देश। तूने जिनका

अपमान किय था,

उनके साथ तुझे भी अपमानित होना होगा।

जिनके मानवीय अधिकारों की अवज्ञा की थी,

जिन्हे सामने खड़ा रखकर, साथ बैठने का मान

नही दिया था

उनके साथ तुम्हे भी अपमानित होना होगा।

अपने उँचें आसन से तूने उन्हे नीचे धकेल दिया

उनके साथ अपनी शक्ति को भी निर्वासिक किया

अब वह चरणों से रौंदी जाकर धूल में मिल जाएगी।

टैगोर का भगवान संसार के कणकण में व्याप्त है। उससे उनका हर प्रकार का मानवीय सम्बन्ध है। वह उनके घर का है, मंदिर का है। वही उनका मुख्य अतिथि है, जिसका वह सम्मान करते है। फूल फलों की श्रतुओं में वर्षा मे, बंसत के परमोत्कर्ष में उसी का पद ध्वनि उन्हे सुनाई पड़ती है। टैगोर के भक्ति से ओत–प्रोत गीत उनकी मानवीयता के मूल उत्स है इस मानवीय संवदेना में ही उनके स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचार निहित है।

टैगोर के अनुसार स्वतन्त्रता न केवल एक व्यक्ति, समाज, देश अथवा जाति के लिये आवश्यक है वरन् यह समस्त मानव समाज के लिये आवश्यक है। किसी जाति या राष्ट्र परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ने के ही दुष्परिणाम होते है उनको समस्त मानव जाति को सहन करना पड़ता है। उनका यह विचार था कि जब कभी व्यक्ति के व्यक्तित्व को कुचलने का प्रयास किया जाता है तो

समाज और सम्पूर्ण मानव जाति का अत्याधिक कष्टों का सामना करना पड़ता है। टैगोर स्वतन्त्रता के बजाय आत्मा की स्वतन्त्रता पर बल देते है। आत्मा की स्वतन्त्रतो के आदर्श का अनुसरण कर व्यक्ति एंव समाज अपना चरम विकास कर सकते है। आत्मा की स्वतन्त्रता मनुष्य के अंतरम में अधिक्य के कारण है जिससे मनुष्य समस्त कुरीतियों–सामाजिक, धार्मिक राजनितिक से स्वतन्त्र होकर 'मानव–अधिक्य' (Surplus in man) को पूर्णरूपेण विकसित करना ही मानव का धर्म है। जिसके कारण टैगोर की विश्वविख्यात सूक्ति है कि 'मानव धरती का बालक तो है, परन्तु है स्वर्ग का उत्तराधिकारी।

निष्कर्षतः गुरूदेव का स्वतन्त्रता सिद्वान्त मानव के असीम स्वरूप की पहचान है, उसकी आध्यात्मिक स्वतन्त्रता है।